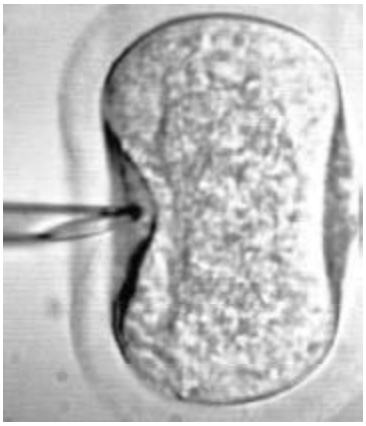

परखनली शिशु

सफलता, विवाद और त्रासदी

पी. बालाराम

सभी प्राणियों के अस्तित्व के लिए प्रजनन अनिवार्य है। निषेचन, भ्रूणीय विकास, विभेदीकरण और विकास की प्रक्रिया प्रकृति की सबसे अद्भुत घटना है। साथ ही यह इतनी सामान्य भी है कि इस पर शायद ही कभी ध्यान जाता है। एक शुक्राणु कोशिका के अंडाणु के साथ मिलने से घटनाओं का ऐसा अद्भुत सिलसिला शुरू होता है जिसकी परिणति अंततः एक बच्चे के जन्म के रूप में होती है। प्रकृति में प्रजनन की ज़रूरत के इतनी आसानी से पूरा हो जाने और गर्भाधान व बच्चे के जन्म की प्रक्रिया से अच्छी तरह परिचित होने की वजह से प्रजनन जीव विज्ञान को उतना महत्त्व नहीं मिल पाया है, जितना मिलना चाहिए। चिकित्सा के क्षेत्र में आर.जी. एडवर्ड्स को वर्ष 2010 का नोबेल मिलने के बाद उस क्षेत्र की ओर ध्यान गया है जो वर्षों पहले नेपथ्य में चला गया था।

उन्नीसवीं सदी में माल्थस की प्रसिद्ध और अनिष्टसूचक भविष्यवाणियों के बाद से ही गर्भाधान सम्बंधी अनुसंधानों का प्रभुत्व रहा है। दरअसल, जब एडवर्ड्स ने परखनली या पेट्री डिश में निषेचन सम्बंधी शोध कार्य शुरू किया, उस समय शायद ही किसी ने सोचा था कि प्रयोगशाला में शुक्राणु और अंडाणु के मिलन से मानव जीवन का विकास संभव है। आज से करीब 45 साल पहले एडवर्ड्स ने एक शोध पत्र में लिखा था, 'कई स्तनधारी प्रजातियों में शुरुआती भ्रूण विकास की पड़ताल अंडाणु और निषेचित भ्रूण प्राप्त करने में कठिनाई के चलते काफी सीमित रही।' चूहे, भेड़, गाय, सुअर, बंदर और मानव के अंडाणुओं के शरीर के बाहर (*इन-विट्रो*) विकास को सुगम बनाने के लिए तकनीक प्रस्तुत करते हुए वे भविष्य की ओर देख रहे थेः 'इस तकनीक के ज़रिए यह संभव हो जाएगा कि मानव व अन्य प्रजातियों में अंडोत्सर्ग-पूर्व विकास और निषेचन व प्री-इम्प्लांटेशन विकास का अध्ययन किया जा सके।'

इसी साल 'मानव अंडाणुओं के *इन-विट्रो* विकास' नामक रिपोर्ट में उन्होंने लिखा था कि मौजूदा कार्य में संभवतः सबसे बड़ी चुनौती निषेचित मानव अंडाणु हासिल करना है। इस रिपोर्ट की अंतिम पंक्तियां भविष्य का संकेत देती हैं : 'फिर भी, एक अंडाशय से पर्याप्त मात्रा में अंडाणु की आपूर्ति से हम *इन-विट्रो* मानव भ्रूणों का विकास कर सकते हैं और यहां तक कि मनुष्य की जिनेटिक विकृतियों को नियंत्रित भी कर सकते हैं।' चार साल बाद 'मानव अंडाणु के *इन-विट्रो* निषेचन के शुरुआती चरण' रिपोर्ट में एडवर्ड्स और अन्य ने मानव भ्रूणों के चिकित्सकीय इस्तेमाल की स्पष्ट रूपरेखा खींच दीः 'निषेचित मानव अंडाणु कुछ विशेष प्रकार की अनुर्वरता के समाधान में उपयोगी साबित हो सकते हैं और ऐसे रोगियों में एक बड़ी संख्या उम्रदराज़ महिलाओं की भी होगी।' अगस्त 1978 में लैन्सेट में एक छोटा-सा नोट 'मानव भ्रूण के पुनःरोपण के पश्चात् जन्म' प्रकाशित हुआ था। यह नोट बेहद तकनीकी व तथ्यपरक था और मुश्किल से आधे कॉलम का था। दुनिया के पहले 'टेस्ट ट्यूब बेबी' के सृजन की प्रक्रिया को केवल एक पंक्ति में इस तरह से पेश किया गया थाः '10 नवंबर 1977 को लेप्रोस्कोपी से एक अंडाणु निकालकर उसका *इन-विट्रो फर्टिलाइज़ेशन* और कल्चर मीडिया में सामान्य विभाजन करवाने के ढाई दिन बाद आठ कोशिकाओं वाले भ्रूण को गर्भाशय में रोपित कर दिया गया।' बहुचर्चित टेस्ट ट्यूब

बेबी का जन्म 25 जुलाई 1978 को सीज़ेरियन से बहुत ही सुरक्षित ढंग से हुआ। वह बेबी 2700 ग्राम वज़न की एक स्वस्थ बालिका थी। पिछले तीन दशक में चालीस लाख बच्चों के जन्म के मद्देनज़र इस छोटे-से पर्चे को पढ़कर किसी को भी इस बात पर आश्चर्य हो सकता है कि कैसे इस वैज्ञानिक आविष्कार ने अनेक लोगों की ज़िन्दगी को छू लिया।

नोबेल पुरस्कार की घोषणा से दो दशक पहले ही पैट्रिक स्टेपटो (1913-1988) का निधन हो चुका था। इन-विट्रो फर्टिलाइज़ेशन (आईवीएफ) की सफलता में एक स्त्रीरोग विशेषज्ञ और सर्जन के रूप में स्टेपटो का काफी अहम योगदान था। यदि स्टेपटो लैप्रोस्कोपी का इस्तेमाल न करते तो मानव अंडाणु हासिल करना बहुत बड़ी बाधा बन जाता। लैप्रोस्कोपी तकनीक का आविष्कार 1950 के दशक में फ्रांस में राउल पाल्मर और जर्मनी में हैंस ब जेनहाइम ने किया था। स्टेपटो के निधन के एक दशक बाद उनके कार्यों पर प्रकाश डालते हुए ग्रेज़गोर्ज लिटिंस्की ने लैप्रोस्कोपिक नसबंदी को लेकर एक किस्सा सुनाया। उन्होंने बताया कि राउल पाल्मर ने एक निजी बातचीत में स्टेपटो से कहा था, 'कैथोलिक बहुल देश होने की वजह से मैं फ्रांस में इसका (लैप्रोस्कोपिक नसबंदी) का बहुत ज़्यादा इस्तेमाल नहीं कर सकता। और इसी तरह हैंस ब जेनहाइम के सामने भी दिक्कतें हैं क्योंकि वे जर्मनी के कैथोलिक क्षेत्र में कार्य करते हैं। लेकिन आप इंग्लैंड में बगैर किसी बाधा के कार्य कर सकते हैं।'

वर्ष 1967 में स्टेपटो ने पहली किताब 'लैप्रोस्कोपी इन गायनेकोलॉजी' प्रकाशित की जिसका चिकित्सा के कामकाज पर काफी असर रहा। लिटिंस्की के शब्दों में, 'जब कुछ साल बाद अमरीका में लैप्रोस्कोपिक नसबंदी व्यापक पैमाने पर प्रचलन में आई, तो स्टेपटो की किताब मानक बन गई। एक तरह से उनकी इस किताब ने युरोपीय वैज्ञानिकों और उत्तरी अमरीका में फैलते बाज़ार के बीच सेतु का कार्य किया।' इसके थोड़े समय बाद ही 1968 में स्टेपटो और एडवर्ड्स के बीच सहयोग शुरू हुआ जो एक साल बाद 1969 में शरीर के बाहर मानव अंडाणु के निषेचन के प्रथम प्रदर्शन में परिणित हुआ। पहले टेस्ट ट्यूब बेबी का जन्म इसके नौ साल बाद हो सका। इस दौरान दोनों अपने प्रयासों में लगातार जुटे रहे, जबकि उन्हें किसी तरह की सरकारी मदद भी नहीं मिल रही थी।

ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित रिपोर्ट 'मेडिकल रिसर्च काउंसिल ने 1971 में मानव गर्भाधान पर अनुसंधान में सहायता के लिए रॉबर्ट एडवर्ड्स और पैट्रिक स्टेपटो को मदद देने से इन्कार क्यों कर दिया' हर उस व्यक्ति को पढ़ना चाहिए जिसकी दिलचस्पी निर्णय प्रक्रिया में है। रिपोर्ट में कहा गया है, "1970 के दशक के कई विवादों में सच के महत्त्वपूर्ण तत्व हैं : एडवर्ड्स और स्टेपटो बाहरी थे और उन्होंने मौजूदा विचारधारा के खिलाफ - नए विचार, नए उपचार, नए मूल्यों, नए विमर्श और नए नैतिक सोच को आगे बढ़ाया।"

1970 के दशक में आईवीएफ की बात करते समय नैतिक मुद्दों की चर्चा अक्सर केंद्र में रहती थी। लैप्रोस्कोपिक तकनीक के इस्तेमाल की भी बहुत आलोचना होती थी। 1989 में एडवर्ड्स ने स्टेपटो को दी गई अपनी अविस्मरणीय श्रद्धांजलि में 1970 के दशक के ट्रायल्स का विवरण दिया है। उनका निबंध 'स्टेपटो को श्रद्धांजलि : लैप्रोस्कोपी की शुरुआत' दुनिया के पहले 'टेस्ट ट्यूब बेबी' तक की यात्रा की संभवतः सबसे पठनीय सामग्री है। इसमें उन दोनों के बीच पूर्ण सहयोग का पता चलता है जिसे साझा लक्ष्यों, परस्पर पूरक कौशल, पूर्ण प्रतिबद्धता और कठिन नैतिक सवालों पर समान विचारों से मज़बूती मिली। स्टेपटो के बारे में एडवर्ड्स बताते हैं: "वे शोध पत्र लिखने वाले व्यक्ति नहीं थे। इसलिए जल्दी ही एहसास हो गया कि मुझे ही कलम उठानी होगी और जब तक हम साथ हैं, संयुक्त नाम से ही आलेख लिखने होंगे।" एडवर्ड्स पूछते हैं, "1970 के दशक की परिस्थितियों में और कौन हो सकता था जो लुइस ब्राउन के सृजन में मदद करता?" आईवीएफ सम्बंधित नैतिक मुद्दों पर एडवर्ड्स सार्वजनिक बहसों में

खुद अपनी इच्छा से भाग लेते थे। वर्ष 1971 में प्रकाशित एक आलेख में एडवर्ड्स और एक वकील डी.जे. शार्प 'मानव भ्रूण विज्ञान में सामाजिक मूल्य एवं अनुसंधान' पर बहस करते हैं। प्रकाशन के लगभग चार दशक बाद भी इसे पढ़कर मैं इसकी प्रासंगिकता को देखे बिना न रह सका। आज भी हमें ऐसे टकरावों का सामना करना पड़ता है जब वैज्ञानिक प्रगति को 'उस समाज से रूबरू होना पड़ता है जहां या तो पहले से कोई नज़रिया नहीं है या नया नज़रिया बनाने के लिए संस्थागत साधनों का अभाव है।'

आईवीएफ और टेस्ट ट्यूब बेबी अब बहस के विषय नहीं रहे हैं। नोबेल पुरस्कार की वजह से जब इस विषय की यादें फिर ताज़ा हुई हैं, ऐसे समय में भारत में पैदा हुए पहले टेस्ट ट्यूब बेबी और उससे जुड़े त्रासद एपिसोड की स्मृति में जाने से मैं अपने आप को रोक नहीं पा रहा हूं।

ओल्डहैम में सफलता के कुछ माह बाद ही भारत में 3 अक्टूबर 1978 के दिन पहले टेस्ट ट्यूब बेबी ने जन्म लिया था। सुभाष मुखर्जी (1931-1981) और उनके सहयोगियों ने इसके लिए जिस प्रक्रिया को अपनाया था, वह एडवर्ड्स और स्टेपटो द्वारा इस्तेमाल की गई विधि से बहुत अलग थी। आईवीएफ की सफलता पर डॉ. मुखर्जी की रिपोर्ट को कोई सराहना नहीं मिली। बल्कि उनके प्रयोग की जांच के लिए पश्चिम बंगाल सरकार ने एक जांच समिति गठित कर दी। बाद में नौकरशाही की वजह से उन्हें मिली प्रताड़ना और अपनी विशेषज्ञता से इतर नेत्र रोग सम्बंधी संस्थान में तबादले से क्षुब्ध होकर डॉ. मुखर्जी ने जुलाई 1981 में खुदकुशी कर ली। सुभाष मुखर्जी की इस कहानी को कोलकाता में उनके सहयोगियों और प्रशंसकों ने जीवित रखा है, लेकिन बहुत से लोग उनकी इस गाथा से अवगत नहीं हैं।

वर्ष 1997 में टी.सी. आनंद कुमार ने करंट साइंस में एक बहुत ही अद्भुत आलेख लिखा था। भारत के पहले टेस्ट ट्यूब बेबी का श्रेय आनंद कुमार (1936-2010) को दिया जाता है। उन्होंने एक असामान्य कदम उठाते हुए मुखर्जी के नोट्स और शोध पत्रों का अध्ययन करने का फैसला किया और फिर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि डॉ. मुखर्जी की उपलब्धि को मरणोपरांत ही सही, मान्यता मिलनी चाहिए। कुछ माह पहले ही आनंद का निधन हो चुका है। उनके निधन पर आर.एच. मेहता ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए करंट साइंस में लिखा, 'इतनी उदारता और ईमानदारी दुर्लभ है।' मुखर्जी के अनुसंधान का निर्णायक चरण 'आठ कोशिकीय भ्रूण का सफल शीत-संरक्षण था - उसे 53 दिनों तक स्टोर करके रखना, सामान्य ताप पर लाना और फिर मां की कोख में रोपित करना'। इसके परिणामस्वरूप 1978 में एक जीवित शिशु का जन्म हुआ, किसी और व्यक्ति द्वारा इस कार्य को दोहराने से पूरे पांच साल पहले। उनका यह कार्य एक अनजान सी शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। आजकल यह एक आम तकनीक है।

मुखर्जी ने अपना कार्य बेहद कठिन परिस्थितियों में और उत्साहहीन माहौल में किया था। जब उन्होंने सफलता की घोषणा की तो सारे हालात उनके खिलाफ हो गए। उन्होंने अपना कार्य तब किया जब गर्भनिरोधक अनुसंधानों को काफी समर्थन मिल रहा था। 'परिवार नियोजन' बहुत ही लोकप्रिय नारा बन चुका था और आपात काल के दौर में जबरन नसबंदी की घटनाओं के बाद 'परिवार कल्याण' का नया रूप अख्तियार कर चुका था। इन कठिन वर्षों की पृष्ठभूमि में सुभाष मुखर्जी ने अपना कार्य आगे बढ़ाया था। विडंबना यह है कि एक दमनकारी सरकार से मुक्ति के बाद भी उन सरकारी अफसरों का कुछ नहीं बिगड़ा जिनकी वजह से मुखर्जी ने खुदकुशी की थी।

चिकित्सा के क्षेत्र में इस साल का नोबेल पुरस्कार उन दृढ़ संकल्पित प्रयोगधर्मियों को एक श्रद्धांजलि है जिन्होंने व्यापक विरोध के बीच अपने कठिन लक्ष्य हासिल किए। आईवीएफ एक महान ड्रामा, विवाद और दुर्भाग्यवश एक त्रासदी की कहानी है। ***(स्रोत फीचर्स)***